जीवन के उतार-चढ़ावों पर उद्विग्न न हों

यों तो जरा-जरा-सी बात पर दुःखी होना बहुत से लोगों का स्वभाव होता है। यह स्वभाव किसी प्रकार भी वांछनीय नहीं माना जा सकता। मनुष्य आनन्द स्वरूप है, उसका दुःखी होना क्या ? उसे तो हर समय प्रसन्न, आनन्दित तथा उत्साहित ही रहना चाहिए। यही उसके लिए वांछनीय है और यही जीवन की विशेषता। इस स्वभाव के अतिरिक्त लोग तब तो अवश्य ही दुःखी रहने लगते हैं, जब वे किसी उच्च स्थिति से नीचे उतर आते हैं। इस दशा में वे अपने दुःखावेग पर नियन्त्रण नहीं कर पाते और फूल जैसे जीवन में ज्वाला का समावेश कर लेते हैं। जब कि उस उतार की स्थिति में भी दुःख-शोक की उपासना करना अनुचित है।

उतार की स्थिति में दुःखी होना तभी ठीक है। जब वह उतार पतन के रूप में घटित हुआ हो। और यदि उसका घटना नियति के नियम 'परिवर्तन', ईश्वर की इच्छा, प्रारब्ध अथवा दुष्टों की दुरभि-संधियों के कारण हुआ हो तो कदापि दुःखी न होना चाहिए। तब तो दुःख के स्थान पर सावधानी को ही आश्रित करना चाहिए। पतन के रूप में उतार का घटित होना अवश्य खेद और दुःख की बात है। उदाहरण के लिए किसी परीक्षा को ले लीजिए, यदि परीक्षार्थी ने अपने अध्ययन, अध्यवसाय और परिश्रम में कोताही रखी है। समय पर नहीं जागा, आवश्यक पाठ आत्म-सात नहीं किये, गुरुओं के निर्देश और परामर्शों पर ध्यान नहीं दिया। अपना उत्तरदायित्व अनुभव नहीं किया और असावधानी तथा लापरवाही बर्ती है तो उसका फेल हो जाना खेद, दुःख व आत्म-हीनताका विषय है। उसे अपने उस किए का दुःख रूपी दण्ड मिलना ही चाहिए। वह इसी योग्य था। उसके साथ न किसी की सहानुभूति होना चाहिए और न उसे सान्त्वना और आश्वासन का सहयोग ही मिलना चाहिए।

किन्तु उस पुरुषार्थी विद्यार्थी को दुःख से अभिभूत होना उचित नहीं, जिसने पूरी मेहनत की है और पास होने की सारी शर्तों का निर्वाह किया है। बात अवश्य कुछ उल्टी लगती है कि जिसने परिश्रम नहीं किया, वह तो अनुत्तीर्ण होने पर दुःखी हो और जिसने खून-पसीना एक करके तैयारी की वह असफल हो जाने पर दुःखी न हो। किन्तु हितकर नीति यही है कि योग्य विद्यार्थी को असफलता पर दुःखी नहीं होना चाहिए। इसलिए कि उसके सामने उसका उज्ज्वल भविष्य होता है। दुःख और शोक से अभिभूत हो जाने पर वह निराशा के परदे में छिप सकता है।

अयोग्य विद्यार्थी का न तो कोई वर्तमान होता है और न भविष्य। वह निकम्मा, चाहे दुःखी हो, चाहे प्रसन्न कोई अन्तर नहीं पड़ता। इस प्रकार पतन द्वारा पाई असफलता तो दुःख का हेतु है, किन्तु पुरुषार्थ से अलंकृत प्रयत्न की असफलता दुःख खेद का नहीं, चिन्तन-मनन और अनुभव का विषय है। आशा, उत्साह, साहस और धैर्य की परीक्षा का प्रसङ्ग है। प्रयत्न की असफलता स्वयं एक परीक्षा है। मनुष्य को उसे स्वीकार करना और उत्तीर्ण करना ही चाहिए।

प्रायः आर्थिक उतार लोगों को बहुत दुःखी बना देता है। जिसका लम्बा-चौड़ा व्यापार चलता हो। लाखों रुपये वर्ष की आमदनी होती हो, सहसा उसका रोजगार ठप्प हो जाए, कोई लम्बा घाटा पड़ जाए, हैसियत बिगड़ जाए और वह असाधारण से साधारण स्थिति में आ गिरे तो वह अवश्य ही दुःखी और शोक-ग्रस्त रहने लगेगा। फिर भी इस आर्थिक उतार का शोक करना उचित नहीं। क्योंकि शोक करने से स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। यदि शोक करने और दुःखी रहने से स्थिति में सुधार की आशा हो तो एक बार शोक करना और दुःखी रहना उस स्थिति में किसी हद तक उचित कहा जा सकता है। किन्तु यह सभी अच्छी तरह से जानते हैं कि विपन्नता का उपचार दुःखी रहना नहीं, बल्कि उत्साहपूर्वक पुरुषार्थ करना ही है।

तथापि लोग उल्टा आचरण करते हैं। यह कम खेद की बात नहीं है।

सम्पन्नता से विपन्नता में आ जाने पर लोग क्यों दुःखी रहते हैं? इसके अनेक कारण होते हैं। इसका एक कारण तो है अपनी वर्तमान स्थिति से विगत स्थिति की तुलना करना। दूसरा कारण है दूसरों की सम्पन्न स्थिति को सामने रखकर अपनी स्थिति देखना। तीसरा कारण है, सामाजिक अप्रतिष्ठा की आशंका करना: चौथा कारण है लज्जा और आत्म-हीनता का भाव रखना। और पाँचवाँ कारण है, विगत वैभव का व्यामोह। यह और इसी प्रकार के अन्य कारणों वश लोग अपने आर्थिक उतार पर दुःखी और शोक-ग्रस्त रहा करते हैं। किन्तु यदि इन कारणों पर गहराई से विचार किया जाए तो पता चलेगा कि इन कारणों को सामने रखकर अपनी विपन्नता पर शोक करना बड़ी हल्की और निरर्थक बात है। इनमें से कोई कारण तो ऐसा नहीं, जिसे शोक का उचित सम्पादक माना जा सके।

अपनी वर्तमान स्थिति से विगत स्थिति की तुलना करने से क्या लाभ। अतीत काल की वह स्थिति जो वैभव पूर्ण थी, आज लौट कर नहीं आ सकती। हाँ उसकी तरह की स्थिति वर्तमान में बनाई अवश्य जा सकती है। किन्तु यह सम्भव तभी होगा, जब अतीत का रोना छोड़कर वर्तमान के अनुरूप साधनों का सहारा लेकर परिश्रम और पुरुषार्थ किया जाये। केवल अतीत को याद कर-करके दुःखी होने से कोई काम न बनेगा। जब मनुष्य अपने वैभवपूर्ण अतीत का चिन्तन करके इस प्रकार सोचता रहता है तो उसके हृदय में एक हूक उठती रहती है—एक समय ऐसा था कि हमारा कारोबार जोरों से चलता था। लाखों रुपयों की आय थी। हजारों आदमी अधीनता में काम करते थे। बड़ी-सी कोठी और कई हवेलियाँ थीं। मोटर कार पर चलते थे। मन-माने ढँग से रहते और व्यय करते थे। लेकिन आज यह हाल है कि कारोबार बन्द हो गया है। आय का मार्ग नहीं रह गया। दूसरों की माहतहती की नौबत आ गई है। कोठियाँ और हवेलियाँ बिक गईं। मोटर कार चली गई। हम एक गरीब आदमी बन गए। अब तो यह जीवन ही बेकार है। इस प्रकार का चिन्तन करना अपने जीवन में निराशा और दुःख को पाल लेना है।

यदि अतीत का चिन्तन ही करना है तो इस प्रकार करना चाहिए। हमने इस-इस प्रकार से अमुक अमुक काम किए थे। जिससे इस-इस तरहकी उन्नति हुईथी। उन्नतिके इस मार्ग में इस-इस तरह के विघ्न आए थे। जिनको हमने इस नीति द्वारा दूर किया था। इस प्रकार का चिन्तन करने से मनुष्य का सफल स्वरूप ही सामने आता है और वह आगे उन्नति करने के लिए प्रेरणा पाता है। विचारों का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बड़ा गहरा पड़ता है। जो व्यक्ति अपनी अवनति और अनिश्चित भविष्य के विषय में ही सोचता रहता है, उसका ज़ीवन-चक्र प्रायः उसी प्रकार से घूमने लगता है। इसके विपरीत जो अपनी उन्नति और विकास का चिन्तन किया करता है, उसका भविष्य उज्ज्वल और भाग्य अनुकूलतापूर्वक निर्मित होता है।

मनुष्य की चिन्तन क्रिया बड़ी महत्त्वपूर्ण होती है। चिन्तन को यदि उपासना की संज्ञा दे दी जाए, तब भी अनुचित न होगा। जो लोग उपासना करते हैं, उन्हें अनुभव होगा कि जब वे अपना ध्यान परमात्मा में लगाते हैं तो अपने अन्दर एक विशेष प्रकार का प्रकाश और पुलक पाते हैं। उन्हें ऐसा लगता है, मानो परमात्मा की करुणा उनकी ओर आकर्षित हो रही है। यह कल्याणकारी अनुभव उस उपासना उस चिन्तन अथवा उन विचारों का ही फल होता है, जिनके अन्तर्गत कल्याण का विश्वास प्रवाहित होता रहता है।

इस प्रकार जिस प्रकार का विश्वास और जिस प्रकार के विचार लेकर मनुष्य अपने भविष्य के प्रति उपासना करता है, उसी प्रकार के तत्त्व उसकी जीवन परिधि में सजग तथा सक्रिय हो उठते हैं। अतएव मनुष्य को सदैव ही कल्याणकारी चिन्तन ही करना चाहिए। निराशापूर्ण चिन्तन जीवन के उत्थान और विश्वास के लिए अच्छा नहीं होता।

दुःख मनाने से दुःख के कारणों का निवारण नहीं हो सकता। दुःख के कारण उद्विग्न और मलीन रहने के कारण मन की शक्तियाँ नष्ट होती हैं। अधोगत व्यक्ति के भौतिक साधन प्रायः नगण्य हो जाते हैं। उस स्थिति में

उसके पास मनोबल के सिवाय अन्य कोई साधन नहीं रह जाता। मनोबल का साधन कुछ कम बड़ा साधन नहीं होता। मनोबल के बने रहने पर मनुष्य में प्रसन्नता, विश्वास और उत्साह बना रहता है। इन गुणों को साथ लेकर जब किसी स्थान पर व्यवहार किया जाता है तो दूसरों पर उसके धैर्य, सहिष्णुता और साहस का प्रभाव पड़ता है। लोग उसे एक असामान्य व्यक्ति मानने लगते हैं। उन्हें विश्वास रहता है कि इसको दिया हुआ सहयोग सार्थक होगा। यह परिस्थितियों से हार न मानने वाला दृढ़ पुरुष है। इस प्रतिक्रिया से लोग उस व्यक्ति की ओर स्वतः आकर्षित हो उठते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उपासक की ओर परमात्मा की करुणा आकर्षित हो उठती है।

विगत वैभव का सोच करना किसी प्रकार भी उचित नहीं। क्योंकि अतीत का चिन्तन न तो वर्तमान में कोई सहायता करता है और न भविष्य का निर्माण। बल्कि वह उस व्यामोह को और भी सघन तथा दृढ़ बना देता है, जिसके अधीन मनुष्य विगत वैभव का सोच किया करते हैं। उत्थान अथवा अवनति के माया जाल से बचने के लिए आवश्यक है कि उनके प्रति व्यामोह के अंधकार से बचे रहा जाय। इस सत्य में तर्क की जरा भी गुंजाइश नहीं है कि संसार परिवर्तन के चक्र से बँधा हुआ घूम रहा है। यहाँ पर कोई भी सदैव एक जैसी स्थिति के प्रति आश्वस्त रहने का अधिकार नहीं रखता। उसे परिवर्तन का अटूट नियम सहन ही करना पड़ेगा। यह सोचकर इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि पहले गरीब थे, फिर अमीरी आई और अब उसी चक्र के अनुसार पुनः गरीबी आ गई है। पुनरपि यह निश्चित है कि यदि पूर्ववत पुरुषार्थ का प्रमाण दिया जाय तो सम्पन्नता निश्चित है। इस सहज संयोग में रहते हुए सम्पन्नता, विपन्नता से विचलित होना किसी प्रकार भी बुद्धि संगत नहीं है।

किन्हीं विगतमान चीजों के प्रति दुःख होने का कारण यह है कि व्यामोह के वशीभूत मनुष्य उससे अपना आत्म-भाव स्थापित कर लेता है। सोचने की बात है कि जब यह संसार ही हमारा नहीं है, यह शरीर तक हमारा नहीं है तो यहाँ की किसी चीज के साथ आत्म-भाव स्थापित कर लेने में क्या बुद्धिमत्ता है। एक दिन जब मनुष्य खुद ही सब को छोड़कर चला जाता है तो यदि कोई चीज उसे छोड़कर चली जाती है तो इसमें दुःख की क्या बात है? यह संसार और उसकी दृश्यमान अथवा अदृश्यमान सारी चीजें एकमात्र परमानन्द की हैं। उसके सिवाय किसी भी व्यक्ति का यहाँ की किसी चीज पर अधिकार नहीं है। जिसे जो कुछ मिलता है, वह सब परमात्मा का दिया होता है।

मनुष्य की बुद्धिमानी इसी में है कि वह इस सत्य को स्वीकार करे और इस बात के लिये सदैव तैयार रहना चाहिये कि परिवर्तन के नियम के अन्तरगत उससे कोई भी चीज किसी भी समय ली जा सकती है। इस सत्य में विश्वास रखने वाले को व्यामोह का कोई दोष नहीं लगने पाता और वह सम्पत्ति तथा विपत्ति में सदा समभाव रहता है।

इसी व्यामोह के जाल से बचने के लिए ही गीता में भगवान् ने अनासक्तिपूर्वक जीवन-क्रम चलाने का निर्देश किया है। उत्साहपूर्वक अपना कर्त्तव्य करते हुए इस बात के लिए सदा तैयार रहना चाहिये कि इस परिवर्तनशील जगत् में कुछ भी अपना नहीं है। सम्पन्नता अथवा विपन्नता जो भी प्राप्त हो रही है, किसी समय भी बदल सकती है। यह अनासक्त भाव मानव-जीवन में सुख-शांति का बड़ा महत्त्वपूर्ण विधायक है। मानव-जीवन आनन्द रूप है। दुःखों, सन्तापों तथा आवेगों से इसे अशान्त रखना अन्याय है। ऊर्ध्व स्थिति से अधोस्थिति में आकर अथवा विपन्नता से सम्पन्नता में पहुँचकर किन्हीं अतिरिक्त अथवा अन्यथा भाव से आन्दोलित नहीं होना चाहिये। सम्पन्नता की स्थिति में अभिभूत रहना और विपन्नता में दुःखी होना, दोनों भाव ही जीवन में अशांति का कारण हैं।

विगत वैभव के प्रति व्यामोह के कारण वर्तमान् जीवन तो अशान्त रहता है, साथ ही मलीन चिन्तन के कारण भविष्य भी प्रभावित होता है। अनासक्त भाव से, परिवर्तन में विश्वास रखते हुए उत्साहपूर्वक अपना कर्त्तव्य करते हुए जो स्थिति प्राप्त हो, उसे मित्र की भाँति स्वीकार करने से जीवन में अशांति और असुख की सम्भावना नहीं रहती।